खण्ड: 1, अंक: 2 सितम्बर 2018

संश्लेषण

डी सी आर सी मासिक पत्रिका

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

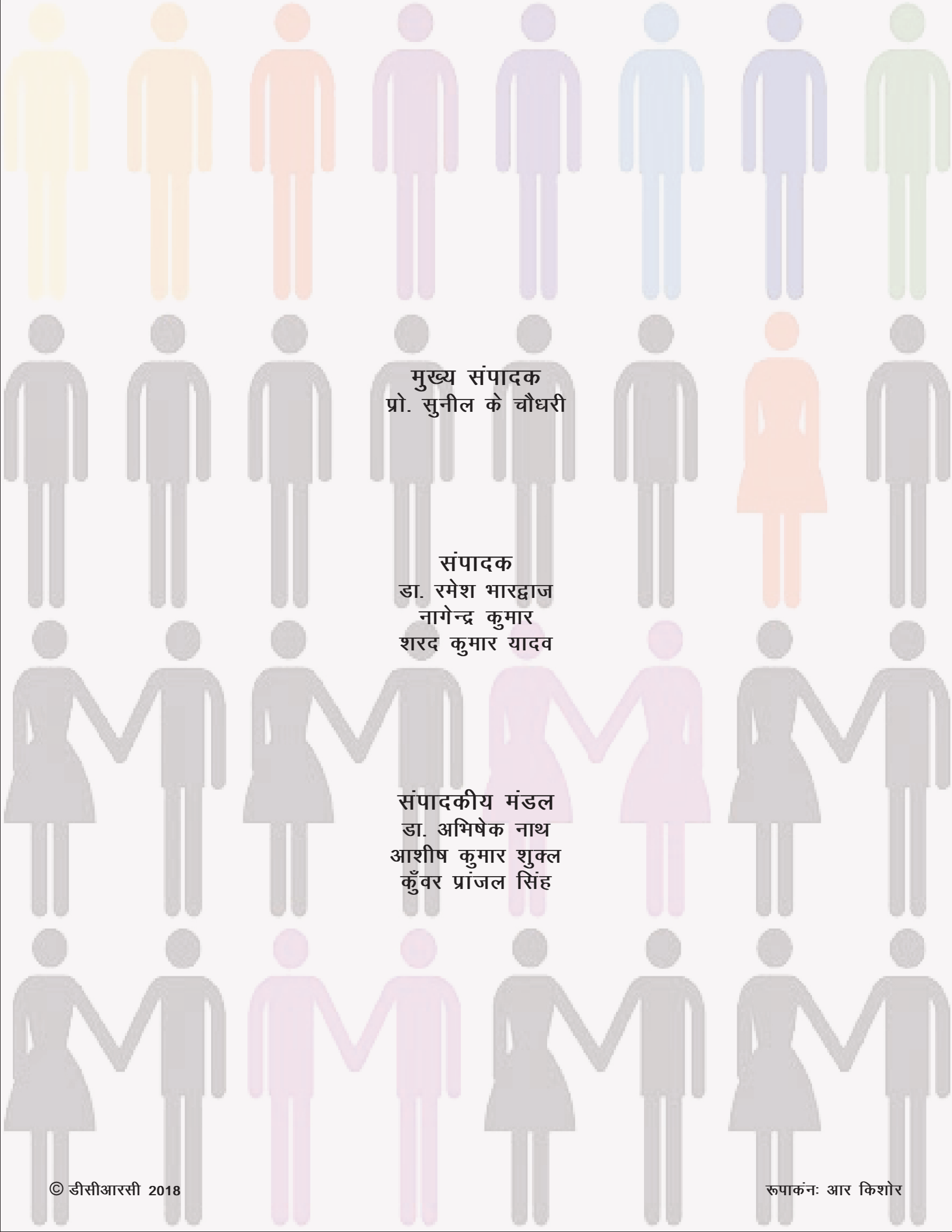

मुख्य संपादक
प्रो. सुनील के चौधरी

संपादक
डा. रमेश भारद्वाज
नागेन्द्र कुमार
शरद कुमार यादव

संपादकीय मंडल
डा. अभिषेक नाथ
आशीष कुमार शुक्ल
कुँवर प्रांजल सिंह

© डीसीआरसी 2018

रूपाकंनः आर किशोर

संश्लेषण
मुख्य कथ्यः लैंगिक निजता

अनुक्रमिका

संपादकीय

1.	लैगिक निजता संवैधानिक या सामाजिक	– प्रीति यादव	3–5
2.	लैगिक निजता का राजनीतिक तथा उसका संस्थागत अंतर्विरोध	– पंकज	6–8
3.	लैंगिक या जेंडर?	– ललित कुमार	9–11
4.	समलैंगिकताः सैद्धान्तिक पक्ष	– निशा कुमारी	12–14
5.	भारतीय समाज व समलैंगिक	– डा. संध्या वर्मा	15–17
6.	समलैंगिकता अपराध या अधिकारः भारतीय संदर्भ में एक विमर्श	– जया ओझा	18–19
7.	समलैंगिक विवाहः निजता एवं सामाजिक स्वीकृति के बीच एक संघर्ष	– काजल	20–22
8.	समलैंगिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	– राजिन्द्र कुमार	23–25
9.	समलैंगिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण	– सृष्टि	26–28
10.	व्याभिचार कानूनः पारिवारिक मूल्यों के रक्षक एवं बाधक	– शिम्पी पांडेय	29–30
11.	यौनिक निजताः कुछ आलोचनात्मक पक्ष	– मेघा	31–32

संपादकीय

विकासशील राज्य शोध केन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका, संश्लेषण के द्वितीय अंक के प्रकाशन में हमें अपार हर्ष हो रहा है। हिन्दी की यह पत्रिका शोध केन्द्र से जुड़े समस्त शोधार्थियों, शिक्षार्थियों एवं विद्यार्थियों द्वारा समसामयिक मासिक विषय पर एक सामूहिक लेख प्रकटीकरण का प्रयास है। वर्ष 2018 के सितम्बर माह में नारीवाद, लैंगिकता, यौनिकता जैसे विषय 'सार्वजनिक बनाम निजी' प्रसंग के रूप में न्यायिक निर्णयों द्वारा अत्याधिक प्रभावित हुए हैं। विषय की समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र ने 'लैंगिक निजता' विषय पर लेख आमंत्रित किये। दस उत्कृष्ट लेखों को सम्पादकीय मंडल ने चयनित किया जो आप सभी के समक्ष एक प्रकाशित पत्रिका के रूप में उल्लेखित हो रहे हैं। ये समस्त लेख न केवल लैंगिकता के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करते हैं बल्कि भारत के विशेष संदर्भ में नारीवादी विमर्श के इस पक्ष की महता को भी उदृत करने का प्रयास कर रहे हैं।

संश्लेषण के द्वितीय अंक के समस्त लेख मौलिक होने के साथ–साथ जीवन से जुड़े आधारभूत बिंदुओं को प्रकट करते हैं। लेखकों के विचार स्वतंत्र चिंतन के परिचायक हैं तथा सम्पादकीय मंडल ने इनकी मौलिकता को संपादन के माध्यम से किसी भी प्रकार प्रभावित व परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। व्यक्तिगत लेखों में प्रस्तुत तथ्य एवं मत लेखकों के स्वंय की रचनात्मकता, सृजनात्मकता एवं मौलिकता को प्रदृर्शित करती है।

संश्लेषण के द्वितीय अंक में प्रकाशित लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम वर्ष 2018 के अक्टूबर माह के अपने तृतीय समसामयिक एवं महत्वपूर्ण अंक में और गुणवत्ता का प्रयास करेंगें।

संपादक मंडल

शुक्रवार, 26 अक्टूबर 2018

लैंगिक निजताः संवैधानिक या सामाजिक

प्रीति यादव
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार

यतो धर्मस्ततो जयः– भारतीय सर्वोच्च न्यायालय का आदर्श वाक्य अर्थात् जहाँ धर्म वहाँ न्याय। धर्म का तात्पर्य सत्य से है जो सदैव विजयी होता है अर्थात् 'सत्यमेव जयते'।

धर्म भारतीय समाज का मूल तत्व है, जिसको केंद्र में रखते हुए हमने निरंतर प्रगति की है। धर्म अर्थात् सत्य की खोज और स्थापना, सामाजिक संस्थाओं का आदर्श एवं अनिवार्य कार्य है। जो पुरातन काल से लेकर प्रौद्योगिकी काल तक अनवरत चलता आ रहा है। न्याायिक संस्थाएं संवैधानिक आदर्श पर कार्यरत होती है और संवैधानिक आदर्श समाज की आत्मा पर। इस प्रकार संवैधानिक मूल्य एवं सिद्धांत समाज के लिए और समाज द्वारा निर्मित होते है। भारतीय समाज और संस्थाएँ सदैव एक दूसरे के अनुयायी और आभारी रहे हैं, जिसका कारण दोनों की शक्ति विषयक आत्मश्लाघा नहीं अपितु आत्मचेतना है। एक दूसरे से सीखना, सुध ाार करना और समृद्ध होना दोनों की कार्यशैली है।

भारतीय समाज और संविधान के मध्य की इस अटूट अंर्तसम्बन्धता का परिणाम है– समाजशास्त्रीय न्यायशास्त्र यद्यपि इसके औपचारिक जनक अमेरिकी न्ययाविद् रोस्के पाउंड है जिन्होनें वर्ष 1911 में इसको प्रचारित किया। यह एक ऐसी न्यायिक व्यवस्था है जो जैविक विधि तथा वैध ाानिक यथार्थवाद पर आधारित है। औपचारिक एवं अभिजनवादी सिद्धांतों के विपरित समाज सरोकारी निर्णय लिये जाते हैं। भारतीय संदर्भ में जातिवाद, छुआछूत, बाल–विवाह, घरेलू हिंसा, शिक्षा का अधिकार से सम्बन्धित निर्णय समाजशास्त्रीय न्याय को स्थापित करते हैं। प्रस्तुत लेख में यह विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है कि हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'लैंगिक निजता' पर दिया गया निर्णय कितना संवैधानिक या सामाजिक हैं।

लैंगिक निजता एवं संवैधानिकता

वर्ष 2017 में सर्वोच्च न्यायालय की नौ सदस्यीय संवैधानिक खंडपीठ ने जस्टिस के. एस. पुटुस्वामी बनाम भारत संघवाद में सर्वसम्मति से निर्णय देते हुए 'निजता के अधिकार' को अनुच्छेद–21 के जीवन और स्वतत्रंता के अधिकार के अर्न्तगत मूल अधिकार का अभिन्न हिस्सा माना।

हाल ही मे, संविधान पीठ द्वारा– भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के अर्न्तगत समलैंगिकता तथा धारा 497 के अर्न्तगत व्यभिचार दंड कानून पर ऐतिहासिक निर्णय देते हुए निजता के साथ लैंगिक पक्ष को भी जोड़कर इसे विस्तृत करते हुए 'लैंगिक निजता' का अधिकार बना

दिया गया है। यद्यपि इस 'लैंगिक निजता' की संविधान द्वारा कोई वैधानिक परिभाषा तो नहीं दी गई है, परन्तु तात्पर्य स्पष्ट होता है कि ''जाति, धर्म, नस्ल, लिंग और स्थान से स्वतंत्र यौन संबंध का अधिकार लैंगिक निजता प्रदान करेगी।''

दोनों निर्णय ऐतिहासिक एवं साहसिक हैं तथा इनके द्वारा कुछ महत्वपूर्ण संकल्पनाएँ स्थापित की गई हैं–प्रेम का अधिकार, जीवन साथी चयन की स्वतंत्रता तथा लैंगिक स्वतंत्रता (पति पत्नी का मालिक नहीं है)। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन संकल्पनाओं की जिस प्रकार व्याख्या की गई है, वह जे.एस.मिल की महान कृति 'ऑन लिबर्टी' (1859) में व्याख्यायित 'स्व–संबंधी कार्य' के मानदंडो पर स्थापित है, जो व्यक्तिगत कार्यों की परिधि में समाज और सरकार के हस्तक्षेप को व्यक्ति को पशु बनाने जैसा मानते है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी इस निर्णय में व्यक्तिगत–निजता को सर्वोपारिकता देकर एक सामाजिक निर्वात निर्मित कर दिया गया है।

लैंगिक निजता एवं सामाजिकता

सर्वे भवन्तुः सुखिन, सर्वे सन्तु निरामयाः

उपर्युक्त श्लोक भारतीय समाज के समावेशी स्वरूप को दर्शाता है जिसने सामाजिकता एवं समरसता को निरंतर बनाकर रखा है। वैश्वीकरण के युग में भी संस्कृति के स्थानीयकरण को मजबूती मिल रही है। इस समाज में व्यक्तिगत से अधिक समाजिक और उपभोग से अधिक उपकार प्रचलित है। 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई।' अर्थात् जे.एस. मिल के स्व–संबंधी कार्य से अधिक पर संबंधी कार्य अधिक महत्वपूर्ण है या अन्य शब्दों में प्रत्येक कार्य को परहित से जोड़ना भारतीय समाज की अभिवृत्ति है।

लैंगिक निजता का वाद सामाजिक दृष्टिकोण से पवित्रता और परिवारिकता से जुड़ा है। विवाह एक सामाजिक संस्था है, जो मात्र दो लिंगों का निजी चयन या मिलन न होकर दो परिवारों का भी सम्मानजनक एवं समयपर्यंत जुड़ाव होता है। वैवाहिक युगल आगे चलकर परिवारिक एवं भावी पीढ़ी के निर्माण एवं पालन–पोषण के उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हैं। समाज लैंगिक निजता से संबंधित एक आचार संहिता निर्धारित करता है, जिसे यौन नीतिशास्त्र कहते हैं।

संवैधानिक नैतिकता से सामाजिक नैतिकता

मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्र द्वारा समलैंगिकता पर निर्णय देते हुए 'संवैधानिक नैतिकता' के आदर्श का प्रयोग किया गया। संवैधानिक नैतिकता का सिद्धांत सर्वप्रथम डा० अम्बेडकर ने स्थापित किया था, जिनके अनुसार– ''लोकतांत्रिक भारत में ऐच्छिक समस्त सामाजिक एंव आर्थिक परिवर्तन संवैधानिक प्रक्रिया द्वारा लाए जाए न कि आंदोलन या असहयोग द्वारा।''

डॉ० अम्बेडकर का यह विचार संवैधानिक नैतिकता में निहित सामाजिक नैतिकता को भी स्पष्ट करता है। अर्थात्, संविधान का आदर्श समाज की संरचना एवं संस्कृति के अनुरूप सहजतापूर्ण परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करना है। समाजशास्त्रीय न्याय इस दिशा में संवैधानिक और सामाजिक नैतिकता के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है, जो दोनों दृष्टिकोणों को संतुलित एवं समावेशित करता है। लैंगिक निजता के निर्णय में इसका प्रयोग समाज द्वारा प्रेम की स्वतंत्रता को स्वीकार करने के लिए होना चाहिए, जो धर्म, नस्ल, लिंग के बंधन से परे हों। दूसरी ओर न्यायविद् यौनिक निजता में सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल्य को जोड़कर प्रेम की स्वतत्रंता के साथ ही उसकी पवित्रता को भी सुनिश्चित कर सकते हैं। अतः संवैधानिक एवं सामाजिक नैतिकता के मध्य इस प्रकार का सन्तुलन संवेदनशील विषयों पर अत्यन्त आवश्यक एवं सराहनीय होगा, जिसे समाजशास्त्रीय न्याय के माध्यम से सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

♦♦♦♦♦

लैंगिक निजता का राजनीतिक तथा संस्थागत अंतर्विरोध

पंकज
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

लैंगिक निजता की परिभाषा और सीमाओं को लेकर विवाद न केवल समाज के स्तर पर है, बल्कि राज्य संस्थाओं के मध्य यह विवाद समय–समय पर परिलक्षित होता रहा है। राज्य संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष समीक्षा हमारे सामने प्रस्तुत करती है। परन्तु लैंगिक निजता के विषय पर भारतीय राज्य की संस्थाओं में समाज स्तरीय मतभेद देखने को मिलते हैं। इसलिए केवल समाज और संस्थाओं के मध्य मतभेद को समझकर हम वास्तविक सीमाओं को नहीं जान सकते है। बल्कि इसके साथ हमें समाज, राजनीतिक और राज्य संस्थाओं स्तर के आपसी अंतर्विरोध को समझना भी आवश्यक है।

समाज स्तरीय अंतर्विरोध

समाज स्तरीय संगठन और संस्थाएं वह है जो ना केवल समाज की परंपरा, क्रिया या मूल्यों की अभिव्यक्ति करे बल्कि समाज के एक बड़े वर्ग या समुदाय द्वारा उसको मान्यता दी गई हो। इसलिए इस विषय में इन सामाजिक–धार्मिक संस्थाओं के मध्य अंतर्विरोध को जानना आवश्यक हो जाता है। भारत के सांस्कृतिक संगठन के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मानना है कि समलैंगिक यौन संबंधो के नाम पर लैंगिक निजता की सीमाओं को बढ़ाना गैरकानूनी नहीं है, परंतु इसका महिमामंडन नहीं करना चाहिए।

हालांकि समलैंगिक विवाह या यौन संबंध प्रकृतिक नियमों के खिलाफ हैं। आध्यात्मिक गुरु श्री श्री रविशंकर का मानना है कि हमें प्रचलित कानूनों को छोड़कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और लोगों के विचारों का सम्मान करने से लोकतंत्र सफल होगा। हालांकि उन्होंने नवंबर 2017 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के एक समारोह में कहा कि "समलैंगिक यौन संबंध एक प्रवृत्ति है, परंतु स्थायी नहीं है। इसके विपरीत दूसरे धार्मिक संगठन जैसे कि सनातन संस्था, जमात–ए–इस्लामी हिंद आदि के द्वारा लैंगिक निजता की सीमा में व्यापकता का विरोध किया।

सनातन संस्था का मानना है कि यह धर्म की अवधारणा के खिलाफ है। इसके विरोध की व्यापकता को आगे बढ़ाते हुए स्वामी रामदेव के संगठन भारत स्वाभिमान ट्रस्ट के द्वारा समलैंगिकता को एक बीमारी की संज्ञा दी गई जिसे ठीक किया जा सकता है। जमात–ए–इस्लामी हिंद के द्वारा समलैंगिकता का विरोध करते हुए कहा कि "यह परिवार प्रणाली, प्रकृति विकास और मनुष्य की प्रगति को रोक देगा।"

राजनीतिक अंतर्विरोध

लैंगिक निजता को लेकर राजनीति के स्तर पर मुख्य अंतर्विरोध राजनीतिक दलों के मध्य देखने को मिलते हैं। यह अंतर्विरोध मुख्यतः द्विस्तरीय हैं – (1) अंतर–दलीय अंतर्विरोध (2) अन्तः–दलीय अंतर्विरोध। अंतर–दलीय अंतर्विरोध मुख्यतः विभिन्न दलों के मध्य देखने को मिलते हैं। जिसमें राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों में लैंगिक निजता की सीमाओं को लेकर मतभेद हैं। प्रमुख दलों में कांग्रेस पार्टी ने लैंगिक निजता की सीमाओं को समलैंगिकों के विवाह और यौन संबंधों के अधिकारों का समर्थन करते हुए कहा कि हर किसी के पास जीवन जीने का समान अधिकार हैं। जबकि भारतीय जनता पार्टी के मत में इस विषय को लेकर अस्पष्टता देखने को मिली है। जहां पार्टी ने उच्चतम न्यायालय के पूर्वकालीन निर्णय का स्वागत किया था। परंतु हाल ही में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए परिवर्तित निर्णय पर भारतीय जनता पार्टी का आधिकारिक स्पष्टीकरण नहीं आया। यह दिखाता है कि भारतीय जनता पार्टी इस विषय को लेकर अभी अस्पष्ट है। इसके विपरीत शिवसेना ने इस निर्णय का समर्थन करते हुए कहा कि समलैंगिकों को भी अपने तरीके से जीवन जीने का अधिकार है। समाजवादी पार्टी ने अपने रुख को स्पष्ट करते हुए लैंगिक निजता की सीमा को बढ़ाए जाने का विरोध किया और संसदीय स्तर पर धारा 377 में संशोधन का समर्थन नहीं करेगी। हालांकि अन्य दल तृणमूल कांग्रेस, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने इसका समर्थन किया।

राज्य संस्थाओं के मध्य अंतर्विरोध

लैंगिक निजता की सीमाओं के संबंध में राज्य संस्थाओं में भी द्विस्तरीय अंतर्विरोध है– प्रथम, अंतर–संस्थागत अंतर्विरोध एवं द्वितीय, अन्तः–संस्थागत अंतर्विरोध। अंतर–संस्थागत अंतर्विरोध में मुख्य मतभेद न्यायपालिका और कार्यपालिका के मध्य देखने को मिलता है। जिसमें कार्यपालिका का मानना है कि लैंगिक निजता की सीमाओं में समलैंगिक यौन और विवाह संबंध को बढ़ावा देने से पाशविकता और यौन विकृति को बढ़ावा मिलेगा। दूसरा हिंदू विवाह अधिनियम समलैंगिक विवाह को अस्वीकार करता है। इसके विपरीत उच्चतम न्यायालय के द्वारा 24 अगस्त 2017 के ऐतिहासिक पुट्टुस्वामी निर्णय में कहा कि निजता एक संवैधानिक अधिकार है। इसी के साथ उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया कि यौन उन्मुखीकरण की सुरक्षा मौलिक अधिकार है तथा समलैंगिक समाज को इससे वंचित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह संवैधानिक सिद्धांत पर आधारित है। जनवरी 2018 में उच्चतम न्यायालय ने 2013 के नाज़ फाउंडेशन के निर्णय पर पुनर्विचार करते हुए और 6 सितंबर 2018 में नवतेज सिंह जौहर बनाम भारतीय संघ के निर्णय में सर्वसम्मति से धारा 377 को अवैध घोषित कर दिया।

अन्तः–संस्थागत अंतर्विरोध मुख्य न्यायपालिका की आंतरिक व्यवस्था के मध्य है। न्यायपालिका के स्तर पर देखा जाए तो पिछले 9 वर्ष में तीन बार न्यायपालिका ने अपने निर्णय को बदला है। जुलाई 2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय के द्वारा समलैंगिक यौन संबंध के संदर्भ में धारा

377 को असंवैधानिक घोषित किया गया था। परंतु दिसंबर 2013 में उच्चतम न्यायालय ने सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज फाउंडेशन निर्णय में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द घोषित करते हुए कहा कि धारा 377 में संशोधन या निरसन करने का अधिकार संसद पर छोड़ देना चाहिए। परंतु हाल ही के निर्णय नवतेज सिंह जौहर बनाम भारतीय संघ में उच्चतम न्यायालय ने सर्वसम्मति से धारा 377 को असंवैधानिक माना। अतः कुछ समय अंतराल के पश्चात न्यायपालिका का निर्णय परिवर्तन करना उसकी इस विषय पर अस्पष्टता को परिलक्षित करता है।

उपरोक्त विश्लेषण विमर्श के आधार पर लैंगिक निजता की सीमाओं में समलैंगिक समुदाय को शामिल करने को लेकर विभिन्न परिवर्तन और तथ्य सामने आए हैं। पहला, समाज के स्तर पर कई संगठनों के विचारों में परिवर्तन देखने को मिला है जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संगठन है। इस परिवर्तन का कारण विभिन्न संगठनों के द्वारा न केवल समाज में अपनी मान्यता बनाए रखना है, बल्कि आधुनिक और लोकतांत्रिक मूल्यों से जुड़े रहना भी है। जबकि राजनीतिक स्तर पर जो दल लैंगिक निजता की सीमाओं में समलैंगिकों को मान्यता देने का विरोध करते थे परंतु आज वैचारिक परिवर्तन करते हुए इसका समर्थन किया है। इसका महत्वपूर्ण कारण चुनावी राजनीति में अपनी मान्यता बनाए रखना है। दूसरा, दलों के बीच में जो व्यक्तिगत अंतर्विरोध है उसका कारण व्यक्ति की सामाजिक, क्षेत्रीय और शैक्षणिक पृष्ठभूमि है। जो उसके वैचारिक मूल्यों को प्रभावित करती है। अंतिम राज्य संस्थाएं विशेषकर विधानपालिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच लैंगिक निजता की सीमाओं को लेकर जो अंतर्विरोध देखने को मिला उसका कारण समाज स्तरीय अंतर्विरोध है। जिसके कारण इनकी नीति–निर्णय में निष्पक्षता की बजाय अस्पष्टता परिलक्षित होती है। परंतु एक सकारात्मक तथ्य यह है कि यह अंतर्विरोध धीरे–धीरे द्वंद्व की बजाय सामाजिक राजनीतिक संवाद में परिवर्तित हो रहा है। जो प्रत्येक समाज के लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने में सहायक है।

♦♦♦♦♦

सामाजिक संरचना में लैंगिकता और जेंडर के बीच अंतर्विरोध

ललित कुमार
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

जब हम किसी शब्द का उपयोग करते हैं तो वह अपने साथ केवल हमारे विचारों को ही प्रकट नहीं करता अपितु वह शब्द अन्य व्यक्ति को उस विषय के संदर्भ में अपनी समझ को गढ़ने के साधन के रूप में भी भूमिका अदा करता है। आज जिस शब्द के विषय में हम विचार–विमर्श कर रहे हैं, वह है 'लैंगिकता' और 'जेंडर'। हम यह भी सोच रहे होंगे कि यह क्या बात हुई, हम एक ही शब्द के पर्यायवाची की बात कर रहे है। इसमें क्या विशेष है? जेंडर अँग्रेजी भाषा का शब्द है और हिन्दी भाषा के 'लैंगिकता' शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। वास्तव में इस विचार–विमर्श का मूल उद्देश्य यही है कि लैंगिकता शब्द को जेंडर शब्द के हिन्दी अर्थ में उपयोग किया जा सकता है या नहीं? इन शब्दों के अर्थ से किसी इंसान की सामाजिक पहचान पर क्या कोई असर पड़ता है या नहीं?

हम शुरुआत "लैंगिकता" शब्द के अर्थ से करते है। *क्या है लैंगिकता?* तीन शब्दों के अध्ययन से हम इसे समझने की कोशिश करते हैः लिंग, लैंगिक और लैंगिकता। क्या इन तीनों शब्दों में कोई अन्तर है या तीनों ही एक समान है। लिंग शब्द का सीधा संबंध प्रजननांग से है। लैंगिक शब्द प्रजनन अंग के विभेद को दर्शाता है अर्थात नर व मादा के रूप में वह विशेषता प्रकट करता है। लैंगिकता शब्द लैंगिक शब्द की व्यवहारिक अभिवृति को प्रकट करता है। इस का मतलब यह है कि यह शब्द नर व मादा की सामाजिक भूमिका को प्रकट करता है। इन तीनों शब्दों के अध्ययन से एक बात पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है कि इन तीनों शब्दों के केंद्र में प्रजनन क्षमता है।

दूसरे शब्दों में कहे तो ये तीनों ही शब्द जैविक प्रजनन क्षमता पर आधारित है। यदि हम जेंडर शब्द के अर्थ पर जाएँ तो जेंडर शब्द को कुछ इस तरह से परिभाषित किया जाता है "जेंडर इज सोशली कंस्ट्रकटिड़" अर्थात जेंडर सामाजिक रूप से गठित है। यदि हम जेंडर के इस अर्थ का, हिन्दी भाषा के लैंगिकता शब्द से तुलनात्मक रूप से अध्ययन करें तो यह कुछ महत्वपूर्ण सवाल खड़े करता है। जैसे स्त्री एवं पुरुष की सामाजिक पहचान से परे समाज में जो अन्य पहचाने उपस्थित है उन्हें हम क्या कहेंगे? यहाँ अलग सामाजिक पहचानों से तात्पर्य ट्रान्सजेंडर से है। एक बात स्पष्ट रूप में यह निकल कर आती है कि जेंडर लिंग आधारित नहीं अपितु आत्मानुभूति का मसला है। यहाँ एक बात पर गौर करना बहुत आवश्यक है कि कुछ विद्वान आत्मानुभूति के लिए सेक्सुआलिटी के रूप में करते है। यहाँ पर सेक्सुआलिटी का अर्थ यौन आकांक्षाएँ बिल्कुल नहीं है। यौन आकांक्षाओं सेक्सुआलिटी का एक छोटा सा अंग मात्र है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय सेक्सुआलिटी को परिभाषित करते हुए स्पष्ट करता है कि सेक्सुआलिटी का सीधा संबंध आत्मानुभूति से है।

उपरोक्त विचारों से यह समझने का प्रयास किया कि लैंगिकता और जेंडर शब्द के अर्थ क्या है? अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि इन शब्दों के प्रयोग से कैसे किसी की सामाजिक एवं व्यक्तिगत पहचान के लिए संकट उत्पन्न हो जाता है। हम सभी ने एल जी बी टी के विषय में कभी न कभी सुना ही होगा। अक्सर इन सभी के लिए ट्रान्सजेंडर शब्द का भी प्रयोग किया जाता है लेकिन एल जी बी टी में भिन्नताएँ है। अगर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के 15 अप्रैल 2014 के ट्रान्सजेंडर संबन्धित निर्णय पर गौर करें तो भारतीय सर्वोच्च न्यायालय स्पष्ट रूप से कहता है गे, लेस्बियन और बाइसेक्सुअल को ट्रान्सजेंडर नहीं माना जा सकता है क्योंकि ये तीनों ही यौन आकांक्षाओं से जुड़े है। जबकि ट्रान्सजेंडर पहचान का मुद्दा है। ट्रान्सजेंडर वह इंसान होता है जिसका जन्म तो महिला या पुरुष शरीर में होता है लेकिन वह अपनी पहचान अपने जन्मजात शरीर के साथ समाहित नहीं कर पाते।

सर्वोच्च न्यायालय ट्रान्सजेंडर को परिभाषित करते हुए कहता है कि *किन्नर, हिजड़ा, अरावनी, कोथि, शिव–शक्ति, इंटरसेक्स, क्रॉसड्रेस्सर* सभी को ट्रान्सजेंडर के रूप में मान्यता दी जाती है। इन सभी समुदायों को ट्रान्सजेंडर या तृतीय वर्ग के रूप में मान्यता इस लिए दी गई क्योंकि ये सभी स्त्री और पुरुष की पहचान से अलग अपनी पहचान चाहते है। हम यहाँ पर लैंगिकता और जेंडर शब्द के ट्रान्सजेंडर की सामाजिक एवं व्यक्तिगत पहचान में भूमिका को जानने की कोशिश कर रहे है। भारतीय समाज में ट्रान्सजेंडर समुदाय की उपस्थिति नई नहीं है। भारतीय समाज में ट्रान्सजेंडर समुदाय की उपस्थिति के सबसे प्राचीनतम लिखित विवरण हमें ऋग्वेद में प्राप्त होते है। इसके अलावा *महाभारत, रामायण, कामसूत्र, पाणिनी संस्कृत व्याकरण, बौद्ध एवं जैन धार्मिक ग्रंथों* से ट्रान्सजेंडर समुदाय के विषय में विवरण मिलते है। इसके अलावा *सल्तनत* और *मुगल काल* में ट्रान्सजेंडर समुदाय के लोगों को ऊंचे ओहदों पर नियुक्ति के भी साक्ष्य उपलब्ध है। अब सवाल यह उठता है कि यदि भारतीय समाज में ट्रान्सजेंडर समुदाय को स्वीकृति प्राप्त थी तो फिर ट्रान्सजेंडर समुदाय भारतीय समाज में हाशिए पर कैसे पहुँच गया?

यह प्रश्न स्वाभाविक है परन्तु इस के जवाब को खोजने के लिए हमें ब्रिटिश भारत के दौर की जांच पड़ताल करनी होगी। 1857 भारत के इतिहास में ऐसा मोड लाया जिसने भारतीय जनमानस को काफी हद तक प्रभावित किया। 1858 में *ब्रिटिश सरकार* ने *ईस्ट इंडिया कंपनी* के भारतीय शासन को अपने अधीन ले लिया था। 1858 व उसके बाद के दौर में भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा कानून के शासन को स्थापित किया गया। इस कानून के शासन में लैंगिक रूप से केवल स्त्री एवं पुरुष को ही कानूनी मान्यता प्रदान की गयी थी। 1861 में भारतीय दंड संहिता की *धारा 377* एवं *क्रिमिनल ट्राइब एक्ट '1871'* ने ट्रान्सजेंडर समुदाय की आपराधिक छवि गढ़ने में अहम भूमिका अदा की। 1947 को भारत ब्रिटिश शासन से आजाद हो गया। स्वतंत्र भारत ने गणतन्त्र प्रणाली को अपनाया। भारतीय संविधान ने किसी भी भारतीय नागरिक के साथ किसी भी तरह के, किसी भी आधार पर किए जाने वाले भेदभाव को दंडनीय अपराध माना गया है। लेकिन भारतीय राज्य के प्रशासन ने भी ब्रिटिश *लैंगिक बाइनरी*

को स्वीकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि कानूनी रूप से मान्य न होने के कारण ट्रान्सजेंडर समुदाय भारत सरकार, भारतीय संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को प्रदान सभी अधिकारों एवं सुविधाओं से वंचित हो गए। 2014 के भारतीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ट्रान्सजेंडर को कानूनी दर्जा प्रदान किया गया था। अब दस्तावेज में लिंग के स्थान पर जेंडर शब्द का प्रयोग किया जा रहा है।

हमने उपरोक्त विचार विमर्श के माध्यम से यह जाना की लैंगिकता और जेंडर शब्द एक दूसरे के समानार्थी नहीं है बल्कि इन दोनों ही शब्दों के अर्थ एवं संदर्भ भी अलग अलग है। हमें इन शब्दों के प्रयोग में सावधान रहना चाहिए क्योंकि ये कोई साधारण शब्द नहीं है बल्कि ये शब्द किसी की पहचान को भी परिभाषित करते है।

♦♦♦♦♦

समलैंगिकता : सैद्धांतिक पक्ष

निशा कुमारी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

6 सितम्बर 2018 का दिन भारत में लैंगिक निजता के सम्बन्ध में विशेष महत्व रखता है। इस दिन सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय द्वारा कानूनी तौर पर समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से मुक्त करते हुए लैंगिक निजता के प्रति सम्मान की पुष्टि की। यह लेख समलैंगिकता के सैद्धांतिक विमर्श को बहुत ही कम शब्दों अर्थात् सूत्र रूप में पाठक के समक्ष रखने का एक प्रयास है।

मानव लैंगिकता की प्रकृति जटिल है। रुचि, व्यवहार तथा अस्मिता में विविधताओं की स्वीकृति लैंगिकता के बहुआयामी चरित्र को स्पष्ट करती है। लैंगिकता के यह आयाम सभी मनुष्य में समरूप नहीं होते। एल.जी.बी.टी. समुदाय को साधारणतः लेस्बियन (महिला–महिला), गे (पुरुष–पुरुष), बाईसेक्सुअल (महिला तथा पुरुष दोनों के प्रति लैंगिक रूझान) ट्रांसजेंडर तथा इनका समर्थन करने वाले समुदायों, संगठनों तथा उपसंस्कृतियों के समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह अपनी साझी संस्कृति तथा सामाजिक अन्दोलन के आधार पर संगठित हुए है।

समलैंगिकता के प्रति सामान्य तौर पर दो तरह के विमर्श है। एक तरफ समलैंगिकता को अप्राकृतिक मानते हुए इसे एक ऐसी बीमारी के रूप में देखा जाता है, जिसका उपचार किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार यह मत समलैंगिकता को कानूनी रूप से अपराध की श्रेणी में रखते हुए इसे प्रतिबंधित करने का पक्ष रखता है। वहीं इससे भिन्न दूसरा मत इसे प्राकृतिक मानकर कानूनी रूप से उनकी स्वीकृति का पक्ष रखता हैं। यौन विज्ञानी तथा समाज विज्ञानी इस तर्क के प्रति निरंतर जागरूक होते जा रहे हैं कि समाज को सिर्फ विपरीत लैंगिक–समलैंगिक, गे–लेस्बियन तथा पुरुष–महिला जैसे भागों में नही बाँटा जा सकता। यद्यपि बाईसेक्सुअल, ट्रांससेक्सुअल तथा ट्रांसजेंडर भी समाज का अभिन्न अंग हैं। अतः लैंगिकता की अवधारणा जीव विज्ञान, व्यवहार तथा अस्मिता के जटिल मिश्रण के रूप में परिवर्तित होती जा रही है।

समलैंगिकता एक सांस्कृतिक क्रिया के रूप में बहुत प्राचीन है। साप्पो, एक ग्रीक कवयित्री तथा कला की अध्यापिका थी, जिनका समयकाल 630–612 ईसा पूर्व था। वह महिलाओं के प्रति अपनी लैंगिक रुचि तथा कई महिला रक्षकों के साथ अपने संबंधों के कारण जानी जाती थी। परन्तु कला के प्रति अपनी संवेदनशीलता तथा कविता, दोनों के लिए उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। प्लेटो ने उन्हें ग्रीक कला की देवी बताया है तथा तत्कालीन सिक्कों पर साप्पो के उत्कीर्ण चित्र भी उस समय में उनके व्यक्तित्व की महत्ता को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार प्राचीन ग्रीक में समलैंगिकता के प्रति किसी भी प्रकार की नकारात्मक प्रतिक्रिया का अभाव दिखाई

देता है। यह ईसाई धर्म के उदय का परिणाम था कि समलैंगिकता को कलंकित रूप दे दिया गया तथा इसे लैंगिक विमर्श की मुख्य धारा से बाहर कर दिया गया। ईसाई धर्म के वृहत वितांत (मेटा नैरेटिव) ने समलैंगिकता को पतित श्रेणी में ला खड़ा किया। कार्ल वेस्टफ, कार्ल उल्रिच्स और रिचर्ड वोन क्राफ्टएबिंग जैसे यौन विज्ञानियों ने समलैंगिकता को प्रतिकूलता (Inversion) के रूप में वर्णित किया।

समलैंगिकता को पाप, अपराध तथा रोग मानने की समझ में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में परिवर्तन आने लगा और इसे मानव लैंगिकता में स्वाभाविक माना जाने लगा। 1973 में अमेरिकी मनोचिकित्सकीय संगठन तथा 1992 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने समलैंगिकता को औपचारिक रूप से प्राकृतिक तथा सामान्य होने का दर्जा दिया। पुरुष–पुरुष तथा महिला–महिला के मध्य संबंधों को न केवल प्रतिबंधों और अपराध की श्रेणी से मुक्त किया गया, अपितु अनेक देशों जैसे नीदरलैंड, दक्षिण अफ्रीका, बेल्जियम, स्पेन, हंगरी, आइसलैंड, जर्मनी, फ्रांस, मेक्सिको संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ संघीय इकाईयों तथा अन्य देशों ने समलैंगिक विवाह को कानूनी दर्जा भी प्रदान किया।

भारत में इस सम्बन्ध में स्थिति विरोधाभासी दिखाई देती है। यहाँ समलैंगिकता को कलंकित करने तथा अपराधिक श्रेणी में शामिल करने की घटना को वैदिक ब्राह्मणवाद तथा बाद में औपनिवेशिक शासन का आयात माना जाता है। भारत में ब्रितानी औपनिवेशिक शासन ने 1868 में दंड संहिता में धारा 377 को जोड़ा तथा समलैंगिकता को प्रकृति के नियमों के विरूद्ध बताते हुए इसे अपराध बताया और दण्ड के रूप में जुर्माना तथा आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान किया। जबकि इससे पूर्व महिला–महिला तथा पुरुष–पुरुष यौन संबंधों को भारतीय संस्कृति में यौनिकता की स्वीकृत श्रेणी में ही रखा जाता था। खजुराहो के मन्दिरों की मूर्ति कला तथा उड़ीसा के कुछ हिन्दू मंदिरों की संरचना इस स्वीकृति की पुष्टि करती है। औपनिवेशिक प्रभाव के कारण भारत में समलैंगिक पहचान को अपराधिक माना जाने लगा। इसी कारण भारत का सांस्कृतिक वातावरण समलैंगिक प्रवृति वाले व्यक्तियों के लिए प्रतिकूल बना रहा।

नब्बे के दशक में अस्मिता का मुद्दा लेस्बियन, गे सिद्धांतों तथा आन्दोलन, दोनों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण होने लगा। 2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने 'नाज़ फाउंडेशन बनाम दिल्ली सरकार' में निर्णय दिया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 377 तथा अन्य ऐसे कानूनी प्रावध ाान जो निजी, वयस्क, सहमति तथा अव्यवसायिक व्यवहार के विरुद्ध हों, वह भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन करते है। परन्तु बाद में 11 दिसम्बर 2013 को सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायलय के इस निर्णय को निरस्त करते हुए धारा 377 को संवैधानिक बताया। एक बार पुनः शीर्ष न्यायालय में याचिका दायर कर पिछले फैसले पर पुनर्विचार करने की मांग की गयी। जिस पर सुनवाई के परिणामस्वरूप न्यायलय द्वारा दो वयस्कों के बीच समलैंगिक सम्बन्ध को अब अपराध की श्रेणी से बाहर कर न्यायालय ने

व्यक्तिगत चुनाव को सम्मान दिया।

शीर्ष न्यायलय द्वारा समलैंगिकता की स्वीकृति को भारत में पुर्नस्थापित करना जहाँ इन्हें कानूनी स्वीकृति तो प्रदान करता है परन्तु सामाजिक दायरे में इसकी स्वीकार्यता तथा सामाजिक सोच के क्षेत्र में व्यापक स्वीकृति मिलना सरल प्रतीत नहीं होता। अतः मानवीय गरिमा की सुरक्षा के लिए कानूनी प्रावधानों के अतिरिक्त सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन अपेक्षित है। समलैंगिकों की लैंगिक अस्मिता के प्रति व्यापक जागरूकता उत्पन्न करके तथा मुख्य रूप से विषमलिंगीय समाज में सम्मानपूर्वक जीवन–यापन करने में इनकी सहायता करना अनिवार्य है।

♦♦♦♦♦

भारतीय समाज व समलैंगिकता

डॉ. संध्या वर्मा, श्यामलाल महाविद्यालय (सांध्य)
(अध्येता, डी.सी.आर.सी.)

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 377 पर दिए गए निर्णय से जहाँ एक समुदाय के लोगों ने राहत की सांस ली है, वहीं दूसरी ओर इस निर्णय ने लैंगिक निजता तथा समलैंगिकता से जुड़े कई नये विर्मशों को जन्म दिया है। विश्व के तथाकथित उन्नत देशों ने भी समलैंगिकता को कुछ वर्ष पूर्व ही अपराधिक श्रेणी से हटाया है तथा समलैंगिक संबंधों को मान्यता प्रदान की गई है। उसके कुछ समय पश्चात् इससे जुड़े कई अन्य अधिकारों, जैसे समलैंगिक, विवाह, संपत्ति अधिकार तथा विभिन्न सामाजिक अधिकारों को भी बहुत से विकसित देशों (अमेरिका, कनाडा आदि) में कानूनी मान्यता मिली, जो कि समलैंगिकता को स्वीकार करने के पश्चात् (इस समुदाय के कल्याण से जुड़ा) का एक महत्त्वपूर्ण कदम है। अन्यथा इन अधिकारों के बिना समलैंगिक समुदाय की सुरक्षा व सामान्य जीवन जीने की आकांक्षा पूर्ण होना संभव नहीं है। क्योंकि एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए किसी भी नागरिक को अन्यों के समान अधिकार व एक सामान्य जीवन जीने के अधिकार का होना अत्यंत आवश्यक है। अगर समाज के किसी भी भाग को समाज से अलग–थलग रखा जाएगा अथवा उसे हीन दृष्टि से देखा जाएगा, तो वह वर्ग या समुदाय कभी प्रगति नहीं कर पाएगा अपितु उसमें बहुत से रोग व अपराध पनपने लगेंगे। जो कि देश की प्रगति में अवरोध उत्पन्न करने का कार्य करेंगे।

यदि इसी संदर्भ में भारतीय समाज तथा हाल में धारा 377 पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार करें तो कमोबेश वही स्थिति पाएँगे, जैसे कि अन्य देशों में रही। लैंगिक निजता के अधिकार को स्वीकार करना तथा समलैंगिकता को आपराधिक श्रेणी से हटाना, न्यायालय का एक स्वागत योग्य निर्णय है, परंतु क्या आगे की राह भारत में आसान होगी, जितनी कि अन्य देशों में रही?

यदि हम प्राचीन भारतीय संस्कृति व साहित्य पर नजर डालें तो बहुत से प्राचीन ग्रंथों व शिल्पकार्यों में समलैंगिक संबंधों का उल्लेख हम जिस प्रकार से पाते हैं उससे यह प्रतीत नहीं होता है कि समलैंगिकता को अपराधिक कृत्य माना गया था। परंतु समय के साथ–साथ मध्यकाल के विदेशी प्रभावों ने भारतीय संस्कृति को काफी प्रभावित किया तथा महान भारतीय संस्कृति पर कुछ अच्छे व बुरे प्रभाव डाले। जिसके परिणामस्वरूप भारत का उदार व प्रगतिशील समाज, मध्यकाल तक आते–आते रूढ़िवादी समाज में परिवर्तित हो गया। सर्वप्रथम, औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश सरकार द्वारा 'धारा–377' का प्रावधान किया गया, जिसमें समलैंगिकता को आपराधिक श्रेणी में रखा गया। आज स्थिति यह है कि, भारत में समलैंगिकता एक वर्जित विषय है। कोई भी खुलकर इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने में संकोच महसूस करता है।

परंतु विगत कुछ वर्षो में सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों ने व्यक्ति की 'निजता' को एक मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है। इसी के अंतर्गत लैंगिक निजता को भी व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला मानते हुए, प्रत्येक व्यक्ति को अपना लैंगिक साथी चुनने के साथ–साथ अपनी लैंगिक रूचि व लैंगिक पहचान के साथ स्वतंत्रातापूर्वक जीने का अधिकार दिया गया है। हालाँकि निजता के अधिकार में केवल लैंगिक निजता ही नहीं अपितु पारिवारिक जीवन, विवाह, घर तथा प्रजनन आदि विषय भी सम्मिलित हैं, परंतु यहाँ 'लैंगिक निजता' से जुड़ा 'समलैंगिकता' का विषय हमारे विमर्श का केंद्रबिंदु है।

समलैंगिकता को मान्यता मिलने के साथ ही, इस समुदाय के अधिकारों की माँग की यात्रा यहाँ समाप्त न होकर, यहाँ से आरंभ होती है। इस दिशा में अगला कदम होगा, समलैंगिक–विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान करना। विश्व के कई देशों में, कुछ समय पूर्व ही यह मान्यता प्रदान की गई है, जिससे वहाँ पर इस समुदाय के लोगों को इससे जुड़े सामाजिक, आर्थिक अधिकार भी प्राप्त हुए हैं, परंतु आज के भारतीय समाज की समलैंगिकता के प्रति मानसिकता को देखते हुए, यहाँ राह सरल प्रतीत नहीं हो रही है, अपितु इसकी राह में अभी बहुत–सी कड़ी चुनौतियाँ दिखाई पड़ रही है।

सर्वप्रथम, जहाँ तक समलैंगिकता को कानूनी मान्यता मिलने की बात है वह तो मिल गई है परंतु सही मायने में इस समुदाय को समानता तभी प्राप्त होगी जब उन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त हो। दोनों अलग विषय है। अगर इस संदर्भ में हम भारत में 'जाति' का उदाहरण देखें तो यहाँ कानून द्वारा समानता प्रदान करने के पश्चात् भी एक वर्ग को जातिगत आधार पर आज भी समानता के अधिकार से वंचित रहना पड़ता है।

समाज में आज भी प्रचलित परंपरागत (स्त्री–पुरुष के बीच) विवाह होने पर भी, दूसरी जाति में विवाह करने पर या अन्य धर्म के व्यक्ति से विवाह करने पर उन्हें सामाजिक अस्वीकृति का दंश झेलना पड़ता है तथा जिस समाज में सामान्य–विवाह में भी, स्त्री व पुरुष को अपनी इच्छा से साथी चुनने का या प्रेम–विवाह करने का अधिकार बहुत कठिनाई से प्राप्त होता है, ऐसे समाज में समलैंगिक विवाह को मान्यता मिलना बहुत ही दूर की कौड़ी है। यदि ऐसे संबंधों को कानूनी मान्यता प्राप्त होने पर भी सामाजिक मान्यता नहीं मिलती, तो हम एक ऐसे समाज का निर्माण करने की ओर अग्रसर हैं जहाँ बहुत से ऐसे लोग होंगे जो कि मानसिक रूप से अस्वस्थ व रोग पीड़ित होंगे। जब समाज में समलैंगिक संबंधों पर आधारित परिवार होंगे, तब यह परिवार प्राकृतिक रूप से संतान उत्पन्न करने में असमर्थ होने के कारण संतान प्राप्ति के दूसरे उपाय अमल में लाएँगे, जैसे बच्चे को गोद लेना, सरोगेसी या स्पर्म बैंक इत्यादि का प्रयोग, जो कि एक विकृत व्यापार का रूप धारण कर सकता है, इसकी संभावना बहुत ही प्रबल नज़र आती है। इसके अतिरिक्त, विश्व के जिन देशों में समलैंगिक संबंधों व विवाह को मान्यता प्रदान की गई है, वहाँ भी कई सर्वेक्षणों के आधार पर यह माना गया है कि ऐसे परिवार के बच्चों को समाज में बहुत सी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जब उनके

साथी उनके परिवार के स्वरूप को लेकर उन्हें उपहास का पात्र बनाते हैं या हीन दृष्टि से देखते हैं, इसका उनके मानसिक स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव पड़ता है, जो कि सामान्य रूप से उनके व्यक्तित्व के विकास को अवरुद्ध करता है।

समलैंगिकता को लेकर समस्याएँ, व्यक्ति के अपने परिवार से ही प्रारंभ हो जाती है, उसके अपने परिवार–जन भी उससे अपना संबंध नहीं रखना चाहते हैं। आज कानूनी मान्यता मिलने के पश्चात् भी भारत में ना जाने ऐसे कितने समलैंगिक हैं जो कि सार्वजनिक रूप से इस बात को स्वीकार करने से डरते हैं। ऐसी बहुत सी घटनाएँ हुईं हैं, जहाँ समलैंगिक जोड़ों को या तो आत्महत्या करने पर विवश किया गया या परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उन्हें स्वयं ही ऐसा कदम उठाना पड़ा। यदि परिवार का कोई सदस्य समलैंगिक है तो पूरे परिवार को लज्जित होना पड़ता है तथा समलैंगिकता को एक बीमारी की तरह समझा जाता है, उस व्यक्ति को असामान्य घोषित कर दिया जाता है।

भारतीय संस्कृति में विवाह को एक पवित्र बंधन माना जाता है तथा भारतीय जनमानस अभी इसके लिए तैयार नहीं है। इसी प्रकार बहुत से राजनीतिक दल व राजनीतिज्ञ भी अगर इसके विरुद्ध नहीं तो, समर्थन में भी नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। कुछ का मानना है कि यह भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है, तो कुछ इसे रोगों को बढ़ावा देने वाला मानते हैं। कई राजनीतिज्ञ इसे परिवार की संस्था तथा समाज के लिए घातक मानते हैं।

हालाँकि चिकित्सक व मनोचिकित्सक यह तर्क देते हैं कि समलैंगिक रूझान होना भी मानवीय लैंगिकता का एक सामान्य रूप है, पंरतु भारतीय सरकार अभी स्पष्ट रूप से इस पर कोई मत नहीं बना पा रही है, जिससे की इसके प्रति समाज के पूर्वाग्रह को बदला जा सके। भारत में इस विषय पर अभी और अनुसंधान की आवश्यकता है। सिर्फ शिक्षा पर नहीं अपितु समलैंगिकता के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में बदलाव पर बल देने की आवश्यकता है।

हालाँकि लोगों के नजरिए में थोड़ा सा बदलाव जरूर देखने को मिलता है, वह भी सिर्फ फिल्मों के द्वारा, पर वहाँ भी इसका एक हास्यास्पद रूप ही अधिकतर दर्शाया जाता है। एक गंभीर सामाजिक मुद्दे के रूप में इसे उठाना अत्यंत आवश्यक है। हमारे समाज की सोच में, समलैंगिक संबंधों के संदर्भ में अभूतर्पूव बदलाव की आवश्यकता है। एक ऐसी सभ्यता जिसने पश्चिम के दार्शनिकों से पहले बदलाव, उदारवाद व विभिन्नता में एकता जैसी मान्यताओं को आत्मसात किया था, उसे आज के आधुनिक समय में अपनी रूढ़िवादी मान्यताओं को छोड़कर समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना होगा। जितना हम इसे दबाएँगे उतना यह घातक रूप धारण कर सकता है, हमें समाज को इनके लिए भी अनुकूल बनाना होगा, तभी समाज का यह भाग समाज के लिए लाभकारी सिद्ध हो पायेगा।

♦♦♦♦♦

समलैंगिकता अपराध या अधिकारः भारतीय संदर्भ में एक विमर्श

जया ओझा
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

समलैंगिक संबंध को लेकर विश्व भर में विवाद होता रहा है, कई देशों में इसे कानूनी मान्यता प्राप्त हो गई है तो कई देशों में इसे एक घृणित कृत्य समझा जाता है। इतिहास की अवधारणा में भी समलैंगिकों की स्थिति अनुकूल नहीं रही है। भारत में समलैंगिकता को लेकर एक सामाजिक प्रतिबद्धता कायम है, समाज या परिवार ऐसे संबंधों को स्वीकार करने के लिए आज भी उदार नहीं हुए हैं। ऐसे संबंधों को वितृष्णा या घृणित कृत्य के रूप में देखा जाता है, जो ना केवल अपराध बोध पैदा करते हैं, अपितु अपराध का कारण भी बनते हैं। अतः समलैंगिकता को हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में एक अमर्यादित कसौटी मान लिया जाता है। प्राचीन परिदृश्य हो या वर्तमान परिदृश्य भारत एक सांस्कृतिक देश रहा है, यहां की सांस्कृतिक अवधारणा अधिक व्यापक रही है, संस्कृति ने ही देश और समाज को उसके भारतीय होने की पहचान दिलाई है। ऐसे में कभी–कभी समाज का विशेष वर्ग अपने हक की लड़ाई को पूरे समाज के हक की लड़ाई का रूप दे देता है, भारत में आज भी समलैंगिकों द्वारा अपने हक की लड़ाईयां लड़ी जा रही है। उन्हें कानूनी मान्यता तो प्राप्त हो गई है परंतु सामाजिक पहचान के लिए वह आज भी संघर्ष कर रहे हैं । आज भी उन्हें कुछ अधिकारों से वंचित रखा गया है जिसके लिए वह निरंतर प्रयासरत हैं।

"समलैंगिकता" का तात्पर्य एक समान लिंगी पुरुष या समान लिंगी स्त्री के बीच शारीरिक संबंध स्थापित किए जाने वाले कृत्य से है। अर्थात् जब एक पुरुष किसी अन्य पुरुष के साथ या कोई स्त्री अन्य स्त्री के साथ शारीरिक संबंध बनाते हैं, तब उन्हें "समलैंगिक" की संज्ञा दी जाती है और इस कृत्य को समलैंगिकता के नाम से तथा संबंधित व्यक्तियों को "एल जी बी टी क्यू" समुदाय के रूप में जाना जाता है। किंतु हमारे समाज में ऐसा संबंध मान्य नहीं है, यहां केवल "प्राकृतिक शारीरिक संबंध" (विपरीत लिंगी व्यक्तियों के बीच के शारीरिक संबंधों) को ही मान्यता दी गई है। ऐसे संबंधों को मान्यता ना देने के पीछे एक तर्क यह दिया जाता है कि, समलैंगिक संबंध प्राकृतिक रूप से विकसित नहीं होते बल्कि विपरीत सेक्स उपलब्ध ना होने के कारण पनपते हैं, इसलिए ऐसे संबंध यौन अपराध का रुप ले लेते हैं। इस प्रकार समलैंगिकता के दो पक्ष सामने उभर कर आते हैं, एक जो समलैंगिक है वह अपनी शारीरिक इच्छाओं के लिए समान लिंग को चुनते हैं, दूसरे वह जो वास्तव में आनुवांशिक तौर पर समलैंगिक है, इस प्रकार इनमें अन्तर करना कठिन हो जाता है। हालांकि समलैंगिक प्रत्येक धर्म, जाति और समुदाय में है और यह एक सामान्य व्यक्ति की तरह ही होते हैं परंतु हमारे समाज में आज भी इनको तिरस्कृत व उपेक्षित माना जाता है। समलैंगिक होने का कारण अभी भी स्पष्ट नहीं है परंतु ऐसा माना जाता है कि आनुवंशिकी या जन्म से पहले का हार्मोन के प्रभाव (शिशु गर्भ में पल रहा होता है) और वातावरण इसके कारण हो सकते हैं। वैज्ञानिकों

ने यह भी बताया है कि समलैंगिकता केवल मनुष्य में ही नहीं, वरन् बहुत से पशु प्रजातियों में भी पाई जाती है।

भारतीय संदर्भ में देखे तो प्राचीन काल में ना केवल सभी तरह के यौन झुकाव थे, वरन् लोग इतने सहिष्णु और खुले विचारों के थे कि समलैंगिक–प्रेम की मूर्तियों को स्वतंत्रता के साथ बनाकर प्रदर्शित भी किया करते थे, परंतु ब्रिटिशों के आगमन के साथ ही लिंगो का भी विभाजन हो गया। इनके द्वारा एक "भारतीय दंड संहिता 1860" की धारा 377 लाई गई। अतः धारा 377 समलैंगिक गतिविधि का अपराधीकरण करती है तथा किसी भी यौन गतिविधि को जो प्रकृति के खिलाफ हो उसे "अप्राकृतिक अपराध" मानती है। इसलिए कुछ एलजीबीटी समुदाय के लोगों के द्वारा इसके विरुद्ध आवाज उठाई गई और कहा गया है कि यदि दो समान लिंग वाले व्यक्ति आपसी सहमति से संबंध बनाते हैं तो इसे अपराध की श्रेणी में ना रखकर एक अधिकार के रूप में देखा जाए, क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक शोधों द्वारा स्पष्ट हो गया है कि इस प्रकार का व्यवहार प्राकृतिक है। 2001 में एनजीओ "नाज फाउंडेशन" द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय में इसके लिए जनहित याचिका दायर की गई। 2009 में उच्च न्यायालय ने समलैंगिकता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से जोड़ दिया, परंतु 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय की व्यवस्था को बदल कर कहा कि 377 को संशोधित करने पर संसद फैसला करें। परंतु 6 सितम्बर 2018 को सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिक समुदाय को समान अधिकार देने की घोषणा की, मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय बेंच ने आईपीसी की धारा 377 को मनमाना और अतार्किक बताते हुए असंवैधानिक करार कर दिया तथा यह पुष्टि कर दिया कि एलजीबीटीक्यू व्यक्तियों को धारा 14, 15, 19 और 21 के अंतर्गत समान अधिकार है।

परंतु प्रश्न यह है कि जिस समाज में समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी में रखा गया, वहां पर कानूनी मान्यता मिलने के पश्चात भी क्या समलैंगिकों को वह सामाजिक दर्जा मिल पाएगा जिसके वह हकदार हैं? भारतीय संविधान में सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार प्रदान किए गए है। एलजीबीटी समुदाय एक अल्पसंख्यक समुदाय है और संविधान के अनुसार यह भी समान है, परंतु उनकी समानता के अधिकार व समाज में समान व्यवहार के अधिकार का उल्लंघन होता रहा है। आज के समय में एलजीबीटी समुदाय के खिलाफ भेदभाव आम हो गया है, इसकी शुरुआत हमारे अपने घरों से होती है, उनके परिवार इसे एक बुराई के रूप में देखते हैं । कार्यस्थल, स्कूल, कॉलेजों, नौकरियों आदि में भी उन्हें भेदभाव का सामना करना पड़ता है, कई बार ये भद्दे मजाकों व घृणित टिप्पणियों का विषय बन जाते हैं। इस प्रकार इन्हें वैधानिक मान्यता भले ही मिल गई हो परंतु सामाजिक मान्यता अभी भी नहीं मिली है सांस्कृतिक दृष्टीकोण के लोग आज भी इसे एक अपराध मानते हैं। परंतु समलैंगिकता 'अपराध' नहीं 'अधिकार' है इसे समाज में सभी प्रकार के अधिकार व मान्यता प्राप्त होने चाहिए, तभी भारत जैसा देश विकास की ओर अग्रसर हो सकता है।

♦♦♦♦♦

समलैंगिक विवाहः निजता एवं सामाजिक स्वीकृति के बीच एक संघर्ष

काजल
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

समाज में विवाह को सामान्यतः महिला–पुरुष के संबंधों तक विस्तारित माना जाता रहा है। जहाँ एक ओर भारतीय समाज में आज भी गैर–जातीय विवाह को पूर्ण स्वीकृति प्राप्त नहीं हो पायी है, वहीँ दूसरी ओर समलैंगिकता एवं समलैंगिक विवाह जैसा मुद्दा तब भी विवादस्पद था जब अन्य देशों ने इसे वैधता प्रदान की एवं आज भी विवादस्पद है जब भारत के उच्चत्तम न्यायालय द्वारा भारतीय दंड सहिता की धारा 377 को लेकर ऐतिहासिक फैसला दिया गया एवं अपनी स्वीकृति प्रदान की है। जिस कारण समाज में अनेक बहस एवं विचार सामने आये जो किसी न किसी रूप में विवादस्पद हैं। इस लेख का उद्देश्य यह देखना है कि क्या भारत में विवाह वास्तविकता में एक व्यक्ति का निजी अधिकार है? एवं उसमें भी क्या भारत में समलैंगिक विवाह होना उचित है? क्या उच्तम न्यायालय के इस ऐतिहासिक निर्णय के पश्चात भारतीय समाज में इसको स्वीकृति मिलनी चाहिए? और यदि मिलनी चाहिए तो क्यों?

क्या विवाह व्यक्ति का निजी अधिकार है?

भारतीय समाज में विवाह अपने आप में एक सामजिक संस्था बन चुका है, जिसमें परिवार की भूमिका सर्वोपरि है। निजता के विषय को यदि परिवार एवं समाज से जोड़ कर देखा जाए, तो निजता इन दोनों संस्थाओ के अंदर बहुत कम देखने को मिलेगी और वहीँ यदि विवाह के सन्दर्भ में निजता को खोजने का प्रयास किया जाये तो वैवाहिक चयन की स्वतत्रंता आज भी बहुत से व्यक्तियों मुख्यतः महिलाओ को नहीं है, जिसके अनेकों कारण रहे हैं–जिनमे धर्म व जाति दो मुख्य कारण हैं। वहीं उच्चतम न्यायालय द्वारा समलैंगिकता को स्वीकृति देने के निर्णय को परिवार संस्था व समाज द्वारा वैवाहिक परिप्रेक्ष्य में अपनाया जाना काफी जटिल है। भारतीय समाज में विवाह व्यक्ति का निजी अधिकार नहीं है क्योंकि भारतीय समाज बहुत सी विभिन्नताओं को अपने अंतर्गत समाहित किए हुए है, जिन विभिन्नताओं का स्थान सामजिक विभाजन ने ले लिया है और जिसको विवाह ने मजबूती प्रदान की है। समलैंगिकता को इस विभिन्नता के क्षेत्र तक से बाहर रखा जाता है अर्थात इसे विभिन्नता नहीं बल्कि अपराध एवं मानसिक रोग कहा जाता है।

समलैंगिक सम्बन्धो की अस्वीकृति के कारणः

जब भी समलैंगिकता के पक्ष एवं विपक्ष में विमर्श किया जाता है तो इसको अस्वीकार करने वाले लोगों द्वारा दो मुख्य तर्क दिए जाते हैं, जिनमे प्रथम है कि यह धर्म एवं प्रकृति के विरुद्ध

है एवं द्वितीय मुख्य तर्क हैं कि यह एक पाश्चात्य विचार है। दोनों ही प्रश्नो के उत्तर में सर्वप्रथम हिन्दू वैदिक भारत के इतिहास का विश्लेषण आवश्यक है। हम कैसे कह सकते हैं कि समलैंगिकता को पश्चिम से अनुकूलित किया गया है जबकि यह हमारी प्राचीन संस्कृति और पौराणिक कथाओं में गहराई से चर्चित एवं उपस्थित है? कई हिंदू धार्मिक कानूनों में समलैंगिक गतिविधि के खिलाफ आदेश शामिल हैं, जबकि कुछ हिंदू सिद्धांत महिला समलैंगिक संबंधों की निंदा नहीं करते हैं और कुछ तीसरे लिंग वाले व्यक्तियों को अत्यधिक सम्मानित किया जाता है।

वेदों में समलैंगिकता

वेद हिंदू धर्म के स्रोत शास्त्र हैं और उन्हें कालातीत माना जाता है, वेदों में समलैंगिकता का उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन समलैंगिक–कामुकता के विषय में कुछ चर्चा की गयी हैं, एक ऋषि वेद के कौशितकी ब्राह्मण उपनिषद 2: 4 से है: –''अब देवताओं द्वारा प्रेरित प्यार की तीव्र लालसा। जब एक (एम) किसी पुरुष या महिला अथवा पुरुषो और महिलाओं द्वारा प्रेम (प्रिया) प्राप्त करना चाहता है, तो वह पवित्र आग में उपरोक्त वर्णित देवताओं की भेंट चढ़ाएगा''। एक और आकस्मिक संदर्भ शतापाथा ब्राह्मण (2: 4: 4: 1 9) से है: "जिसमें मित्र–दिन के देवता को अमावस्या को रात के देवता वरुण को अपने बीज का नए प्रत्यारोपण करने के लिए कहा जाता है।"

कामसूत्र में समलैंगिकता

प्रसिद्ध कामसूत्र पवित्र कानून के पूरक के रूप में माना जाने वाला एक पाठ है जो कामुकता, लिंग और इसके विभिन्न अभिव्यक्तियों के साथ संबंधित है। इस पाठ में समलैंगिकता का वर्णन विस्तार से किया गया है, साथ ही महिलाओं के द्वारा पुरुष और महिला की भूमिकाओं और पुरुषो द्वारा भी पुरुष और महिला की भूमिकाओं के बीच परिवर्तन करना आदि का विस्तार से वर्णन है। कामसूत्र के लेखक वत्सयान ने यह भी उल्लेख किया है कि कुछ लोग अपने स्वयं के लिंग से ''विवाह'' (परिघरा) के सदस्य हैं और खुले तौर पर या गुप्त रूप से साथ रहते हैं ।

इसके अतिरिक्त कुछ मध्ययुगीन हिंदू मंदिर और कलाकृतियों ने स्पष्ट रूप से पुरुष समलैंगिकता और महिला समलैंगिकता दोनों को उनकी नक्काशी के अंदर चित्रित किया है जैसे खजुराहो में मंदिर की दीवारें। कुल मिलाकर समलैंगिकता को अस्वीकार करने के कारण जो विपक्ष द्वारा या समाज द्वारा सामने रखे जाते हैं वह उचित या वास्तविक विचार नहीं माने जाएंगे।

समलैंगिकता की अस्वीकृति के सामाजिक कारण

जैसा कि उपरोक्त विश्लेषण में देखा गया है कि जिन कारणों का उल्लेख समाज के लोग

समलैंगिकता को स्वीकार न करने के लिए करते हैं वो कारण खोखले हैं क्योंकि समलैंगिकता का विचार भारत में कोई नया पश्चिमी विचार नहीं है, न ही वैदिक पुराणों में इसके विषय में किसी प्रकार की अस्वीकृति दिखी है। यदि गहराई से देखा जाए तो समलैंगिकता को अप्राकृतिक कहा जाता है यानी प्रकृति के विरुद्ध। समाज की मुख्य इकाई अर्थात परिवार का मुख्य उद्देश्य है विस्तार जो निर्भर होता है शिशु के जन्म से। समाज में बहुत सी ऐसी सामजिक घटनाएं देखी जाती हैं जहाँ संतान को जन्म देना इतना आवश्यक माना जाता है कि जो स्त्रियां संतान को जन्म नहीं दे पाती उनको दांपत्य जीवन से निरस्त कर दिया जाता है। इसी दृष्टिकोण से देखा जाए तो समलैंगिक सम्बन्धो में संतान को जन्म दे पाना असंभव है जिस कारण यह अप्राकृतिक माना जाता है जो अस्वीकार्यता का एक मात्र मुख्य कारण है।

समलैंगिक विवाहः स्वीकृति का संघर्ष

जब तक मैं किसी को भी हानि नहीं पहुंचा रहीं हूँ, मैं जो भी करना चाहती हूँ, उसे करने के लिए में स्वतंत्रता हूँ। यह जे.एस. मिल के हार्म सिद्धांत का सरल रूप है कि व्यक्तियों के कार्यों को केवल अन्य व्यक्तियों को नुकसान पहुंचाने के लिए ही सीमित किया जाना चाहिए। इसलिए, जब कोई व्यक्ति एक ही लिंग के व्यक्ति से विवाह करता है या सम्बन्ध रखता है तथा यह किसी और को नुकसान नहीं पहुंचाता है, तो वह व्यक्ति इस विवाह को करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है । रॉबर्ट नोजिक द्वारा स्वयं स्वामित्व का विचार दिया गया था। जैसा कि नामकरण स्वयं सुझाता है, इसका अर्थ है कि मैं अपने स्वयं का स्वामी हूँ। जब मैं खुद का मालिक हूं, तो केवल मैं ही फैसला करूंगा कि मुझे किससे विवाह करना चाहिए। यहाँ बात सिर्फ समलैंगिकता को स्वीकार करने के नहीं है यहाँ बात व्यक्ति के व्यक्तिगत विचार, उसकी स्वतंत्रता एवं उसके व्यक्तिगत चयन को स्वीकार करने एवं सम्मान करने की बात है। हम चोरी के लिए एक चोर, बलात्कार के लिए एक बलात्कारी, हत्या के लिए एक हत्यारे को दंडित करते हैं। लेकिन, क्या हम एक पुरुष को दूसरे पुरुष तथा एक महिला को दूसरी महिला से प्रेम करने के लिए दंडित कर सकते हैं? और क्या यह उचित है? तो इसका उत्तर है नहीं। यह उचित नहीं है क्योंकि यह उनका निजी अधिकार है जिसको समाज के हर व्यक्ति को स्वीकार करना चाहिए समलैंगिकता को विवाद बनाकर नहीं बल्कि उनकी व्यक्तिगत सोच को सम्मान प्रदान करके।

♦♦♦♦♦

समलैंगिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

राजिन्द्र कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

15 अगस्त 1947 में जब देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई तब भारतीय समाज के सभी वर्गों ने इसे अनुभव किया था। परन्तु उस स्वतंत्रता में कुछ सामाजिक व आर्थिक असमानता का प्रश्न भी ज़ोर–शोर से उठा, जिसे भारतीय संविधन के लागू होने के साथ 26 जनवरी, 1950 में वैधानिक या कागजी तौर पर कम करने की कोशिश की गई थी। इस पहल में संविधन की प्रस्तावना में निहित समानता, निष्पक्षता, सामाजिक न्याय जैसे बड़े वादे तो किए ही, साथ–ही–साथ संविधान के भाग–तीन में मौलिक अधिकारों का प्रावधान भी किया, जिसमें कुछ महत्वपूर्ण मानवीय अधिकार भी हैं, जैसे– अनुच्छेद 14 समानता का अधिकार, अनुच्छेद 15 किसी भी आधार पर 'भाषा, धर्म, जाति, लिंग आदि' भेदभाव निषेध का अधिकार, अनुच्छेद 19 भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं अनुच्छेद 21 जीवन की रक्षा एवं दैहिक गरिमा की स्वतंत्रता आदि। इन सब के बाद औपचारिक तौर पर समानता, स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय की अनुभूति सभी भारतीय नागरिकों से कराई गई, पर भारतीय समाज में एक वर्ग ऐसा भी रहा, जिसे स्वयं भारतीय सामाजिक, धार्मिक एवं वैधानिक संकीर्णता ने मौलिक अधिकारों से वंचित किया व सदा उनसे भेदभाव किया। यह वर्ग था एल.जी.बी.टी.क्यू. समुदाय जिसे आमतौर पर समलैंगिकता का समुदाय भी कहा जाता है।

समलैंगिक समुदाय

यह समुदाय प्राचीन भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक से ही रचा बसा है, या नहीं? इस पर अक्सर प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है। पर सवाल करने वाले भी शायद महाभारत में शिखण्डी की भूमिका या हमारे दैनिक सामाजिक जीवन में किन्नर समुदाय का सांस्कृतिक योगदान को नकार नहीं सकते। बदलते वक्त के साथ यह समुदाय अपनी लैंगिक, यौनिक इच्छाओं के चलते समलैंगिकता की ओर बढ़ चला और यह एल.जी.बी.टी.क्यू. बना जहाँ **L-Lesbian** (स्त्री–स्त्री यौन संबंध) **G-Gay** (पुरुष–पुरुष यौन संबंध) **B-Bisexual** (दोनों लिंगों से यौन संबंध) **T-Transgender** (किन्नर) व **Q-Queer** (विचित्र यौन संबंध) का समुदाय बना। इन्हें लैंगिक भेदभाव, लैंगिक पक्षपात व लैंगिक स्टिग्मा का शिकार होना पड़ा क्योंकि यह उस लैंगिक बहुसंख्यक समुदाय (स्त्री या पुरुष में स्पष्टतापूर्ण विभाजन) में नहीं रखे गए जो स्वयं को प्राकृतिक लिंग वर्ग मानते हैं।

इनका इस तरह से लैंगिकता के आधर पर इनका सामाजिक निष्कासन कर दिया गया था जो कि एकदम अतार्किक एवं मानवता विरोधी था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह समाज जन्म से ही लैंगिक आधार पर स्त्री–पुरुष का भेद बना देता है, पर मानव अपनी किशोर अवस्था में ही

अपनी यौन/लैंगिक संवदेनाओं व अभिव्यक्तियों की अनुभूति कर पाता है। ऐसे में हमारे मस्तिष्क में जेण्डर का सामाजिक तौर पर निर्माण होता है, जिसका जैविक लैंगिकता के साथ तालमेल नहीं बैठ पाता। जिनके साथ यह कठिनाईयाँ आती है, उन्हें आगे चलकर लैंगिक–सामाजिक निष्कासन का शिकार होना पड़ता है व उनके साथ अन्य जन अमानवीय व्यवहार करते हैं।

परन्तु सितंबर, 2018 में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता में 5 न्यायाधीशो की पीठ ने सर्वसम्मति से अनुच्छेद 377 को अतार्किक व गैर–संवैध ाानिक मानते हुए निरस्त किया और समलैंगिकता को जैविक व प्राकृतिक मानते हुए इन्हें भी लैंगिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता व सामाजिक न्याय दिया। पर यह लैंगिक स्वाधीनता बड़े संघर्षों से प्राप्त हो पाई।

अनुच्छेद 377 और भारतीय न्यायपालिका

समलैंगिक समुदाय से किया जाने वाला अमानवीय भेदभाव कोई नया नहीं है। जैसे ही भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई, तभी से इनकी लैंगिक अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध लगाकर इसे अवैधानिक घोषित कर दिया, जिसमें भारतीय दण्ड संहिता–1860; भारत के ब्रितानवी कानून की धारा 377 के अन्तर्गत न केवल प्रकृति के विरुद्ध माना गया, अपितु आजीवन कारावास का प्रावधान किया गया था। तब से लेकर अब तक यह समुदाय भारत के स्वतंत्र होने पर भी स्वतंत्र नहीं था। इन्हें देश के भीतर वैधानिक, अवैधानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक भेदभाव झेलना पड़ा।

लेकिन धीरे–धीरे 21वीं शताब्दी में प्रवेश लेते हुए और आधुनिक बौद्धिक विकास होने पर यह समुदाय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समानता, स्वतंत्रता व मानवता के अधिकारों की लड़ाई के लिए एक होने लगा जिसे देखकर भारतीय समुदाय में भी बौद्धिक प्रस्फुटन हुआ व पहली बार 'नाज फाउंडेशन', जोकि यौन संक्रमण बीमारियों की रोकथाम के लिए कार्यरत है, ने दिल्ली उच्च न्यायालय में याचिका तब डाली जब उन्होंने पाया कि समलैंगिक समुदाय गैर–कानूनी होने पर यौन संकमित बीमारियों का इलाज नहीं करा सकते। इस पर 2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने पक्ष में फैसला सुनाते हुए अनुच्छेद 377 को असंवैधानिक करार किया और आपराधिक श्रेणी से बाहर कर दिया।

भारतीय समाज की मानसिक संकीर्णता ने इसे अपनी झूठी संस्कृति के लिए खतरा माना व एक होकर इस के विरुद्ध भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जिस पर 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने सुरेश कौशल ने निर्णय सुनाया और दिल्ली सर्वोच्च न्यायालय के 2009 के निर्णय को पलटते हुए फिर से इसे आपराधिक श्रेणी में डाल दिया। पर उम्मीद यह दी कि भारतीय संसद चाहे तो इसे बदल सकती है। जहाँ भारतीय राजनीतिक दल खुद स्वहित के लिए धर्म,

जाति तथा समुदाय का बंदरवाट कर वोट बनाते है, वहाँ ऐसा बदलाव करने की राजनीतिक हिम्मत कहाँ से आती?

राष्ट्रीय वैधानिक सेवा प्राधिकरण बनाम संघ मामले में सुनाए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने किन्नर समुदाय को तृतीय लिंग का दर्जा दिया व उनकी पिछड़ी हुई आर्थिक–सामाजिक स्थिति को देखते हुए उन्हें शैक्षणिक संस्थानों व नौकरियों में आरक्षण दिया व जेण्डर समानता लाने की कोशिश की। 24 अगस्त 2018 को सर्वोच्च न्यायालय ने निजता के अधिकार को भी संविधान के अनुच्छेद 21 जीवन की स्वतंत्रता एवं दैहिक गरिमा की स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकार में सम्मिलित किया। न्यायमूर्ति के.एस. पुट्टास्वामी के नेतृत्व में 9 जजों की पीठ द्वारा तब जाकर समलैंगिक समुदाय के लिए सितंबर 2018 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लैंगिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के द्वार खुले और देश की 8 प्रतिशत आबादी को आपराधिक श्रेणी से निकाल कर समान मानवीय अधिकार प्राप्त करने वाली श्रेणी में लाया गया। इस प्रकार समानता, सामाजिक न्याय व स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकार प्राप्त हुए और इस लैंगिक समुदाय को लैंगिक अभिव्यक्ति का स्वराज मिल सका। इन्होंने भी भारत में मानवीय गरिमा के साथ इन्द्रधनुष वाला झण्डा विविधता का प्रतीक लहरा दिया।

♦♦♦♦♦

समलैंगिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण

सृष्टि
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

पिछले तीन दशक समलैंगिकता की समझ और स्वीकार्यता में परिवर्तन हेतु महत्वपूर्ण रहे है। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशको में समलैंगिकता से संबंधित प्रवृत्तियों में राजनीतिक व सामाजिक प्रभावों में परिवर्तन आया है। एल. जी. बी. टी. समुदाय से संबंधित विषय मीडिया, सामाजिक नीतियों एवं राजनीतिक अभियानों में एक प्रमुख मुद्दा रहा है।

सर्वोच्च न्यायालय की पांच सदस्यीय संवैधानिक पीठ ने भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के उस भाग को असंवैधानिक घोषित कर दिया, जिसमें अपनी इच्छा से दो समलैंगिक वयस्कों के बीच शारीरिक संबंध को अपराध बताया गया था। इस निणर्य के उपरांत 150 वर्ष पुराने औपनिवेशिक कानून के एक अमानवीय और उत्पीड़क हिस्से का अंत हो गया। सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय न केवल ऐतिहासिक है, अपितु अग्रिम पंक्ति का निर्णय है। न्यायालय ने इस निर्णय से व्यक्तिगत स्वतंत्रता के क्षेत्र को बड़ा कर दिया तथा समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर कर मानवाधिकार को नई ऊँचाई दी है।

भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान मैकाले द्वारा 1860 में भारतीय दंड संहिता बनाई गई तथा समाज द्वारा स्वीकृत इच्छा के विरूद्ध यौनिक संबंधों को अपराध की श्रेणी में रखा गया। धारा 377 एल जी बी टी समुदाय से ही सम्बन्धित नहीं है अपितु पुरुष व स्त्री के बीच स्वीकृत संबंधों के अतिरिक्त अन्य संबंधों को भी अपराध की श्रेणी में ले जा सकती है। यह कानून ब्रिटिश इंडिया में 'बगरी एक्ट, 1533' में आया, जिसमें अप्राकृतिक संबंधों को अपराध माना गया। बगरी एक्ट 1533 को 'ओफेंसस अगेंस्ट द परसंस एक्ट 1828' में बदल दिया गया। अंग्रेजों द्वारा बनाया गया यह कानून आज भी हमारी दंड संहिता में है, जबकि अंग्रेजों ने सेक्सुअल ओफेंसस एक्ट 1967 द्वारा इस कृत्य को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया।

धारा 377 को चुनौती देने वाली याचिका दिल्ली उच्च न्यायलय में 2001 में नाज़ फाउंडेशन द्वारा दाखिल की गयी, 2003 में उच्च न्यायालय ने इसे खारिज कर दिया। याचिकाकर्त्ता निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय गए, परन्तु न्यायालय ने मामले को पुनर्विचार के लिए उच्च न्यायलय को वापस भेज दिया। 2009 में न्यायमूर्ति अजीत प्रकाश शाह तथा न्यायमूर्ति एल. मुरलीधरन ने ऐतिहासिक निर्णय दिया। निर्णय में कहा गया कि धारा 377, जो वयस्कों के यौन संम्बंधो को आपराधिक कृत्य की श्रेणी में लाता है। सविधान के मौलिक अधिकारों अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 15 (भेदभाव का निषेध), अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) का स्पष्टतः उल्लंघन करता है और कहा कि बिना सहमति के नॉन वेजाइनल और नारनट को छोड़कर सहमति से दो वयस्कों के बीच किया गया वेजाइनल सेक्स

अपराध नही है। दिल्ली उच्च न्यायालय के इस निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने 11 दिसम्बर 2013 को न केवल रदद कर दिया दिया अपितु पुनर्विचार याचिका को भी निरस्त कर दिया। इस मामले में नया मोड़ सर्वोच्च न्यायालय के 24 अगस्त 2017 के उस निर्णय से आया, जिसमे निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार माना गया और यौन सम्बन्ध के चुनाव और लैंगिक झुकाव को निजता का प्रमुख लक्षण बताया गया। इसके बाद 10 जुलाई 2018 को समुदाय के अधिकारों पर सुनवाई करते हुए कहा कि जीवन साथी का चुनाव मौलिक अधिकार है।

जिस देश का पौराणिक कथानक इतिहास, स्थापत्य कला, साहित्य और जन जीवन इस तरह के यौन व्यवहार का जीवंत गवाह हो उस देश में ऐसे लोगों को स्वतंत्रता मिलने में देश की स्वतंत्रता के बाद भी सात दशक लग गये। वात्सायन का कामसूत्र तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर गर्व करने वाला देश यौन अधिकारों को लेकर इतना संकीर्ण हो गया। सविधान पीठ का हिस्सा बने न्यायमूर्ति इंदु मल्होत्रा का यह वक्तव्य 'समलैंगिक लोगों के प्रति भेदभाव करने और उन्हें पीड़ा देने के लिए इतिहास और समाज को उनसे क्षमापार्थी होना चाहिए तथा न्याय में हुए विलम्ब के लिए हमें खेद व्यक्त करना चाहिए। न्यायमूर्ति चंद्रचूड की टिप्पणी केवल इस निर्णय के लिए ही नहीं अपितु मानवीय गरिमा और न्याय के प्रति उनकी जवाबदेही के लिए लंबे समय तक याद की जाएगी। व्यक्ति को उसके शरीर का मालिक घोषित किया गया है, यह उसकी इच्छा पर छोड़ दिया गया और स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य एवं समाज को इसकी चिंता नही करनी चाहिए।

विश्व में अमेरिका, रूस, दक्षिण कोरिया, जापान, ब्रिटेन, स्पेन, जर्मनी, इटली, कनाडा सहित करीब 30 देशों में समलैंगिकता स्वीकार्य है। नीदरलैण्ड में समान लिंग में विवाह करना मान्य है परन्तु भारत को यहॉ तक पहुचने में अधिक समय लग गया।

इस रूपान्तरकारी सविधान के कृत्यप्रांत में भारतीय समाज को बदलने का मार्ग है ताकि वह स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व को अपना सके, क्योंकि संवैधानिक नैतिकता मात्र संविधान के उदार शब्दों तक सीमित नहीं है अपितु उसे एक बहुलवादी और समावेशी समाज के निर्माण के लिए उद्यत होना चाहिए।

संविधान केवल बहुसंख्यकों के लिए नहीं है। मौलिक अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्राप्त हैं तथा यह अधिकार बहुसंख्यकों की अनुमति पर निर्भर नहीं हैं। समलैंगिकता न तो मानसिक रोग है, न ही नैतिक दुराचार तथा न ही कोई स्वयं से समलैंगिक होने का चुनाव करता है। यौनिकता का विज्ञान कहता है कि कोई व्यक्ति किसके प्रति आकर्षित होता है, इस पर उस व्यक्ति का कोई नियंत्रण नही होता। इस बारे में हुए शोध यह बताते है कि यौनिक अनुस्थापन जीवन में काफी शुरू में ही निर्धारित हो जाता है। समलैंगिकता को सहमतिपूर्ण माना जाना चाहिए। धारा 377 समलैंगिको संबंधों को अपराधिक करार देती है परन्तु भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में स्पष्ट कहा गया है कि पुरुष और महिला के बीच सहमति से शारीरिक सहवास

बलात्कार नही है और यह दंडनीय नहीं है। चूंकि धारा 377 दो वयस्कों के बीच सहमति और असहमति से स्थापित होने वाले यौन संबंधों में भेद नहीं कर पाता है अतः यह समानता के अधिकार का उल्लंघन करता है। समानता एक ऐसा आधार है जिस पर गैर–भेदभाव वाली न्याय–व्यवस्था का विशाल महल खड़ा है। व्यक्तिगत पसंद के प्रति आदर कानून के तहत स्वतंत्रता का आवश्यक तत्व है।

कानून किसी भी मामले का एक पक्ष होता है और समाज तथा संस्कृति इसक दूसरा पक्ष। बेशक यह लडाई कानून के स्तर पर जीत ली गयी हो परन्तु सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की राह अभी भी शेष है। भारतीय परिवेश और समाज में इस तरह के संबंधों की स्वीकार्यता एक बड़ी चुनौती है। अतः सर्वोच्च न्यायालय का कार्य केवल निर्णय करना था तथा इसके बारे में समाज को जागरूक करने का कार्य सरकार व मीडिया का है।

♦♦♦♦♦

व्याभिचार कानूनः पारिवारिक मूल्यों के रक्षक अथवा बाधक

शिम्पी पांडेय
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय समाज में विवाह एक पवित्र बंधन, परंपरा, सभ्यता, रीति–रिवाज़, और संस्कृति का परिचायक है जहाँ यह मात्र दो व्यक्तियों तक सीमित नहीं होता अपितु इसमें परिवार व समाज की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। विवाह को सामाजिक रूप से स्वीकृत किया गया है, जिसमें पारिवारिक मूल्य समर्पण दायित्व जवाबदेयता इत्यादि महत्वपूर्ण पक्ष हैं। यदि विवाह की संस्था से बाहर कोई पुरुष किसी विवाहित स्त्री से उसके पति की सहमति के बिना यौन संबंध स्थापित करता है तो उसे व्याभिचार कहा जाता है ऐसी स्थिति में स्त्री का पति उस पुरुष पर व्याभिचार का मुकदमा दायर कर सकता है। एक पति अपनी पत्नी के पुरुष साथी पर आरोप प्रत्यारोपित कर सकता है किंतु अपनी पत्नी को दोषी सिद्ध नहीं कर सकता। एक पत्नी को अन्य पुरुष के साथ संबंध स्थापित करने के लिए पति की सहमति अनिवार्य है जो कि महिला के निजता के अधिकार और स्वायत्त चयन को प्रतिबंधित करता हैध् सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय में भारतीय दंड संहिता की धारा 497 को असंवैधानिक घोषित किया, जिसके अंतर्गत व्याभिचार को एक दंडनीय अपराध माना गया था। इसके अनुसार एक पुरुष द्वारा किसी विवाहित स्त्री से उसके पति की सहमति के बिना यौन संबंध बनाना अथवा विवाह से बाहर संबंध स्थापित करना व्याभिचार की श्रेणी में आता है, जो विवाह जैसी पवित्र संस्था को मलिन करता है। सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि पुरुष महिला के साथ निजी संपत्ति के रूप में व्यवहार नहीं कर सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में व्याभिचार कानून को समानता और जीवन के अधिकार के विरुद्ध माना है। यद्यपि एक महिला अपने पति पर व्याभिचार का आरोप नहीं लगा सकती।

सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय लैंगिक समानता, जीवन का अधिकार, पितृसत्तात्मक संरचना को एक नया आधार और एक नई दिशा प्रदान करने की ओर अग्रसर है। यह कानून की लैंगिक तठस्थता की आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिया गया है। किंतु यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि ऐसी परिस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय ऐसे संबंधों को बढ़ावा दे सकता है, जिसमें विवाहित महिला के विवाह की संस्था के बाहर पुरुष से संबंध हो, जिस पुरुष से विवाहित महिला के संबंध होंगे उसे अपराधबोध और दंड का भय भी नहीं होगा। इसमें वृद्धि होने की संभावनाएं निरंतर बनी रहेंगी। ऐसे संबंध भारतीय सभ्यता के हित में नहीं हैं। इस तरह के कदम जहां एक ओर महिलाओं के अधिकार क्षेत्र में विस्तार करते हैं वहीं दूसरी ओर यह पारिवारिक मूल्यों में कुछ सीमा तक ह्रास के लिए उत्तरदायी सिद्ध हो सकते हैं। इस कानून के पक्ष में यह महत्वपूर्ण रूप से उल्लेखित किया गया है कि एक विवाहित स्त्री को भी अपने निजी जीवन के निर्णय लेने का अधिकार है और प्रत्येक निर्णय में उसके पति की सहमति अनिवार्य नहीं है। हालांकि, लैंगिक समानता समाज के लिए आवश्यक है और लैंगिक निजता

एक व्यक्ति का निजी अधिकार है किंतु समाज में ऐसे संबंधों को स्वीकृति प्राप्त नहीं होती और यह भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय का यह कदम लैंगिक समानता स्थापित करने में किस सीमा तक सफल सिद्ध होगा यह भावी समय में स्पष्ट होगा किंतु इससे व्याभिचार की गतिविधियों में वृद्धि होने की असीम संभावनाएं हैं, क्योंकि इससे विवाह संस्था की पवित्रता और परिवारों पर विकृत प्रभाव पड़ेगा। समाज को प्रगतिशील बनाना वर्तमान युग की आवश्यकता है। समाज में महिला को सम्मानजनक स्थान देना और उन्हें पितृसत्तात्मक संरचना के दायरे से बाहर लाना, यह ना केवल कानून, समाज, व परिवार का कर्तव्य है अपितु यह बहुआयामी समावेशी प्रयासों के द्वारा ही संभव है। किंतु व्याभिचार कानून को असंवैधानिक घोषित किये जाने से महिलाओं के अधिकार क्षेत्र में कितना विकास होगा यह कहना संदेहास्पद है। लैंगिक निजता की स्वतंत्रता यदि स्वच्छंदता में परिवर्तित हो जाए तो इसके भयावह परिणाम हो सकते हैं। व्याभिचार को यदि अपराध ना माना जाये तो ऐसे घटनाक्रम सामान्य तौर पर परिवार के बिखराव की समस्या को जन्म देंगे और इसके परिणाम समाज के लिए हानिकारक हो सकते हैं। अतः आवश्यकता है कि व्याभिचार कानूनों में संशोधन किया जाए और ऐसी प्रवृतियों को बढ़ावा देने वाले विभिन्न प्रावधानों का अंत किया जाए।

सर्वोच्च न्यायालय का वर्तमान निर्णय जहाँ एक ओर महिला को उसकी निजता और चयन का अधिकार प्रदान करता है कि उन्हें अपने सभी मामलों में पति की सहमति की आवश्यकता नहीं होगी, वहीँ दूसरी ओर यह व्याभिचार की प्रवृति को अधिक जटिल बना देगा। पश्चिम के कई देशों में व्याभिचार को आपराधिक कृत्य नहीं माना जाता और ना ही इसके लिए किसी प्रकार के दंड का प्रावधान है। पश्चिम के देशों में व्याभिचार व्यक्तिगत अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता है, जिसमें अपनी इच्छानुसार संबंध बनाने का अधिकार है। यद्यपि भारतीय परिवेश और समाज को पश्चिम की अवधारणाओं और कानूनों के प्रारूप को अपनाये जाने की आवश्यकता नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति के मूल्यों का विकास करने की आवश्यकता है जहाँ विवाह, परिवार, समाज, में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित किया जाना चाहिए। महिला को वैवाहिक जीवन में समान अधिकार देने के लिए विभिन्न सुधारों की आवश्यकता है, जो ना केवल परिवार के अंतर्गत अपितु समाज में भी महिलाओं की स्थिति को सुधारने में सहायक हो।

♦♦♦♦♦

यौनिक निजताः कुछ आलोचनात्मक पक्ष

मेघा
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभी हाल ही में, भारतीय दंड संहिता के अनुच्छेद 377 पर आये सर्वोच्च न्यायलय के सकारात्मक निर्णय ने यौनिक निजता के विषय को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। सर्वोच्च न्यायलय के अनुसार व्यक्तियों को अपने शरीर पर पूर्ण प्रभुता है एवं व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य में उनकी शारीरिक घनिष्टता उनके अपने चुनाव का विषय है, जिससे समाज या राज्य को कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। भारत के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने अपना निर्णय देते हुए प्राकृतिक और अप्राकृतिक यौन–संबंधों के बीच अंतर को निषेध बताया और समलैंगिक संबंधों की स्वीकृति को संविधान के आधार पर पुष्ट किया।

सुधारवादी संविधान का तर्क देते हुए मुख्य न्यायाधीश ने समाज में सुधार लाने के उद्देश्य से समलैंगिक संबंधों को व्यक्तिगत चुनाव का विषय बताया। इसी के साथ 'संवैधानिक नैतिकता' के आधार पर समलैंगिक यौनिक निजता को समाज की मुख्य धारा में समाहित करने पर बल दिया।

न्यायधीश आर एफ नरीमन तथा न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ ने भी समलैंगिक यौनिक संबंधों को मनोवैज्ञानिक/मानसिक समस्या न बताकर एक प्राकृतिक–यौनिक रुझान के रूप में समझाने का प्रयास किया है। इनके अनुसार यौनिक निजता का अधिकार एक स्वतन्त्र व्यक्ति की स्वायतता के अधिकार पर स्थापित है।

अनुच्छेद 377 पर सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीशों का सकारात्मक निर्णय एक सराहनीय कदम है, जो ना केवल न्यायिक व्याकरण से परन्तु न्यायिक प्रक्रिया और प्रकार्य से भी पितृसतात्मक विपरीत लैंगिकता के प्रधान्य को चुनौती देता है तथा अस्वीकार भी करता है।

परन्तु यहाँ यह देखने की आवश्यकता है कि समलैंगिकता के सम्बन्ध में यौनिक निजता व स्वायतता, क्या पुरुषत्व व नारीत्व के परिप्रेक्ष्य से बाहर आने में सफल हुई है? यह देखा गया है कि समलैंगिक संबंधों में भी व्यक्ति एक–दूसरे में नारीत्व व पुरुषत्व के गुण देखना चाहते है और इसी प्रकार दो व्यक्ति व्यवहार भी करते हैं। अभिप्राय यह है कि संकल्पनात्मक ढाँचे को चुनौती दिए बिना ही समलैंगिक संबंधों में यौनिक निजता की स्वीकृति को समानता का आधार नहीं माना जाए।

यहाँ दूसरा महत्त्वपूर्ण विचार यह आता है कि समलैंगिकता के सम्बन्ध में प्राकृतिक और अप्राकृतिक यौनिक संबंधों के बीच विभेद को अस्वीकार किया गया है, अर्थात पशुओं के साथ यौन

संबंधों को छोड़कर व्यक्तिओं के बीच सहमति पर आधारित यौनिक संबंधों को अप्राकृतिक नहीं माना जाए फिर चाहे बात स्त्री–स्त्री के बीच की हो अथवा पुरुषदृपुरुष के बीच की। दूसरे शब्दों में पुरुष के लिंग का स्त्री की योनी में प्रवेश (पिनायल पेनिट्रेशन) अब केन्द्र–बिन्दु नहीं है, जिसके इर्द–गिर्द समाज में यौनिक व्यवहार घूमता है और यह कहीं ना कहीं सेक्स में शिशु की बाध्यता की बजाए संतुष्टीकरण पर अधिक केन्द्रित हो जाता है, जो यौनिकता को व्यक्तिगत अधिकार व स्वायतता के साथ जोड़ता है।

पर वहीं दूसरी तरफ जब बात विवाह के अन्तर्गत पति–पत्नी के यौनिक संबंधों पर आती है, तो यहाँ अप्राकृतिक यौन संबंधों को लेकर एक प्रश्न उठ खड़ा होता है। यदि एक विवाह के अन्तर्गत पुरुष अपनी पत्नी के साथ अप्राकृतिक यौन क्रिया करता है तो पुरुष को कानून के तहत सजा का प्रावधान है। यदि समलैंगिकता के विषय पर सहमति पर ज्यादा केन्द्रित होते हुए प्राकृतिक और अप्राकृतिक यौन संबंधों के बीच विभेद को मिटाने की बात होती है तो क्या विवाह के अन्तर्गत पुरुष द्वारा अपनी पत्नी पर किये जाने वाले अप्राकृतिक सेक्स को क्या अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया जायेगा? और बिना सहमति से होने वाले यौन संबंधों को वैवाहिक बलात्कार घोषित किया जायेगा?

ये कुछ ऐसे विषय है जिन पर चर्चा होनी आवश्यक है क्योंकि समलैंगिक अस्मिताओं, इच्छाओं, व यौनिक्ताओं को पुरुषत्व व नारीत्व के संकल्पनात्मक ढांचे के अन्तर्गत अनुग्रहित व सम्मिलित किया जाएगा तो यह कभी भी स्वतन्त्रता और स्वायतता नहीं लेकर आ पाएगा, जिसके सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय किसी ना किसी रूप में अतिश्योक्तिपूर्ण व्यवहार कर रहा है।

♦♦♦♦♦

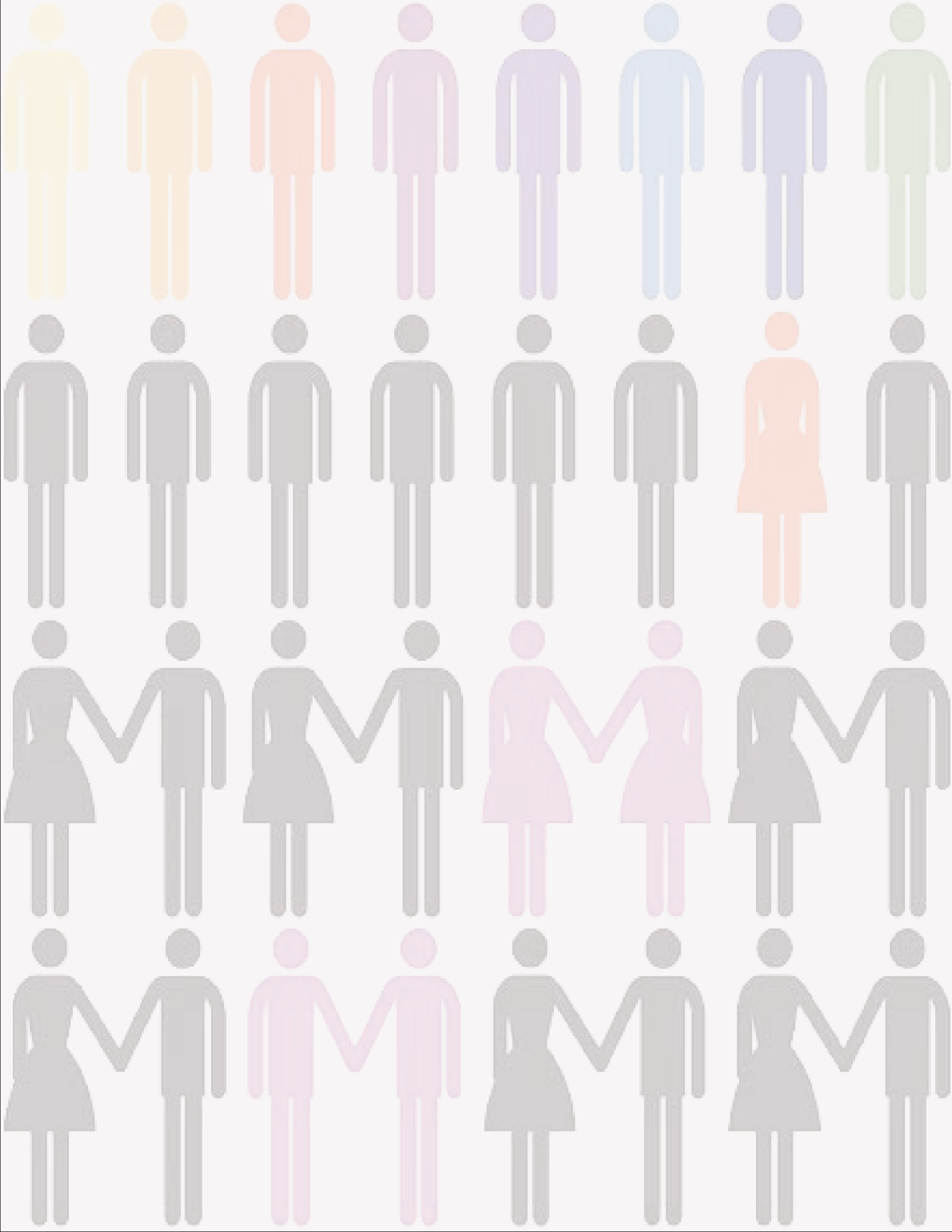

डी.सी.आर.सी.

विकासशील राज्य शोध केन्द्र

अकादमिक अनुसंधान केन्द्र भवन

गुरू तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली–110007